

राज्य राजनीति के उभरते प्रतिमान

इकबाल नारायण, माईरन वीनर तथा हाल में अतुल कोहली आदि विद्वानों ने तुलनात्मक उपागम के माध्यम से राज्य राजनीति के अध्ययन पर बल दिया। भारत के विभिन्न राज्यों में राजनीति का स्वरूप एवं विशिष्टताएं भिन्न भिन्न हैं और राजनीतिक आधारों में भिन्नता पाई जाती है। विगत तीन दशकों में राज्य राजनीति राष्ट्रीय राजनीति से अलग स्वायत्त स्वरूप का होता गया है। जिसे निम्न प्रकार से देखा जा सकता है

1. राज्यों की विशिष्ट सामाजिक प्राथमिकताएँ:

1990 के दशक से राज्यों की राजनीति मुख्यमंत्री के नेतृत्व के परिपेक्ष्य में विकसित होने लगी है। बिहार के संदर्भ में देखा जाय तो 1990 के आम चुनावों में मतदाताओं ने राज्य में जातीय संरचना और उनके हितों की संरक्षा के संदर्भ में अपनी राजनीतिक प्राथमिकताओं को निर्धारित किया। फलस्वरूप राजद एवं जदयू अन्य सभी दलों पर हावी रहे क्योंकि पिछड़ी जातियों के रहनुमा के रूप में ये प्रतिष्ठित हुए। उल्लेखनीय है कि 1990 से बिहार में पिछड़ी जातियों के हितों के संरक्षण के आधार पर जनता दल तथा राष्ट्रीय जनता दल विहार की राजनीति में प्रभावी रहे परन्तु नई सामाजिक यांत्रिकी या समीकरण में जनता दल यू. ने पिछड़ी जातियों में से अति पिछड़ी जातियों को अपने पक्ष में कर बिहार राजनीति को अपने पक्ष में कर लिया इतना ही नहीं दलित जातियों में भी दलित एवं महादलित की श्रेणी बना कर अनुसूचित जातियों के एक बड़े धड़े का समर्थन प्राप्त किया। इस प्रकार 2005 से अबतक ज.द.यू. विहार में प्रबल रही। पिछले तीन दशकों से बिहार राजनीति इन्हीं जातीय समीकरणों के इर्द गिर्द घुमती रही है। उल्लेखनीय है कि धर्मनिरपेक्षता का प्रबल समर्थक ज.द.यू. ने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का समर्थक दल भारतीय जनता पार्टी के साथ गठबंधन किया ताकि अतिपिछड़ा, महादलित तथा सामान्य जातियों का समर्थन मिलता रहे। 2015 में जब भारतीय जनता पार्टी हिन्दुत्व को अधिक तरजीह देने लगी तो ज.द.यू. ने अपने आर्क प्रतिद्वन्दी रा.ज.द. के साथ महगठबंधन कर लिया ताकि पिछड़ी, अत्यंत पिछड़ी तथा दलित एवं महादलित जातियों एवं मुस्लिमों का समर्थन मिले। ऐसा ही हुआ इस महागठबंधन को अप्रत्याशित सफलता मिली।

2. दलीय गोलबंदी का बदलता स्वरूप:

सन् 2000 से राज्यों में भी बहुदलीय व्यवस्था दृष्टिगोचर होती है परन्तु कांग्रेस बनाम भाजपा अन्य सहयोगी दलों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। इस काल के प्रारंभ से नये दलीय समीकरणों की शुरुआत हुई जिसमें कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में दलीय मोर्चा प्रभावकारी हो गई जिन्हें हम क्रमशः यू.पी.ए. तथा एन.डी.ए. के नाम से जानते हैं। विभिन्न राज्यों में इन दलीय मोर्चों में भिन्न भिन्न दलों का गठबंधन होता है। उदाहरण के लिए बिहार में प्रथमतः जे.डी.यू. और बी.जे.पी. तथा एल.जे.पी. एन.डी.ए. के घटक दल थे और राष्ट्रीय जनता दल के नेतृत्व में कांग्रेस और छोटे दल जैसे हम, रा.लो.द तथा भी.आई.पी. दल यू.पी.ए. के घटक बने। वहीं दूसरे राज्यों में भा.ज.पा. और कांग्रेस के साथ उन राज्यों के क्षेत्रीय दल मोर्चा के घटक दल रहे। बिहार में राजद, जदयू, एल.जे.पी., हम, जाप आदि दलों

का नवीन संयोजन (formations) दृष्टिगोचर होता है। इन दलों में गठजोड़ की प्रवृत्ति परिवर्तनीय हो गई। हाल के कुछ राजनीतिक समीकरण इसके उदाहरण हैं जैसे जदयू का महागठबंधन से जुड़ना और पुनः विलग होना, एल.ज.पी और रालोसपा आदि का परिवर्तनीय स्वरूप।

3. क्षेत्रीय दलों का राष्ट्रीय दलों पर प्रभाव :

1990 के पूर्व की तुलना में क्षेत्रीय दल ज्यादा प्रभावी हो गये जैसे ए.आइ.ए.डी.एम.के., तेलगु देशम पार्टी, समाजवादी पार्टी, बी.एस.पी., तृणमुल कांग्रेस, तथा राष्ट्रीय जनता दल। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि सभी दलों ने केन्द्रीय राजनीति में नेतृत्व लेने की होड़ में भी सामिल हो गये। बिहार में 1998 से रा.ज.द जो पूर्व में कांग्रेस के विरुद्ध था वह यूपी.ए. का प्रमुख घटक दल बन गया। वहीं राजद से छिटका जदयू एन.डी.ए. का प्रमुख घटक बन गया। यही नहीं राष्ट्रीय दलों के राज्य स्तरीय संगठनों में भी स्वायत्ताता के पुट देखने को मिलते हैं। राज्य स्तरीय दलों में केन्द्रीय राजनीति से सौदेबाजी की प्रवृत्ति में वृद्धि हो गई। उदाहरण के तौर पर तेलंगना राज्य के पुनर्गठन के लिए दबाव, यूपी.ए. 1 में राजद का प्रभाव तथा एन.डी.ए. में जदयू आदि को हम ले सकते हैं। परन्तु 2014 के बाद स्थिति में परिवर्तन आया है अब क्षेत्रीय दल राष्ट्रीय दलों खासकर भा.ज.पा. पर अपना प्रभाव नहीं डाल पा रहे हैं। एम.पी. सिंह ने यहां तक कह दिया कि अब एन.डी.ए. के घटक दलों के केन्द्रीय मंत्री भी मुक रहते हैं।

4. क्षेत्रीयता की प्रबलता:

भारत में राज्य राजनीति में विगत दो दशकों में क्षेत्रीय नागरिकता को बल दिया जाने लगा है। इसी नाम पर राजनीति ने भी उलट फेर देखने को मिलते हैं। उदाहरण के तौर पर महाराष्ट्र, गुजरात आदि राज्यों में बिहार एवं यूपी.के. मुलनिवासियों को बाहर करने, गुजरात में बिहारियों के साथ हिंसा, बिहार नेतृत्व द्वारा विशेष राज्य की मांग आदि उल्लेखनीय है। क्षेत्रीयता के लक्षण पहले उत्तरपूर्व के राज्यों में प्रबल थे परन्तु आज लगभग सभी राज्यों में देखने को मिल रहा है। कोरोना महामारी में तो यह और भी स्पष्ट हो गया खासकर प्रवासी मजदूरों को अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़े तथा प्रत्येक राज्य ने अपनी सीमा तक ही प्रवासी मजदूरों के परिवहन की व्यवस्था करने तक सीमित रखने में विश्वास किया। इतना ही नहीं प्रवासी मजदूरों को अपने घर वापस लौटने के लिए प्रेरित भी किया जाता रहा जबकि उन राज्यों की अर्थ व्यवस्था में उनका महत्वपूर्ण योगदान था फिर भी उन्हें शरण एवं सुविधाएं नहीं दी गई। यह क्षेत्रीयता का ज्वलंत उदाहरण है। भाषायी विवाद तो अब समाप्त सा हो गया है परन्तु राज्यों के भीतर भी क्षेत्रीय भावनाएं प्रबलता से सर उठा रहीं हैं। झारखण्ड, छत्तीसगढ़, उत्तराखण्ड आदि राज्यों का पुनर्गठन इन्हीं क्षेत्रीयता की भावना के परिणाम हैं।

5. राज्यों में द्विधुरीय दलीय व्यवस्था का उदय: योगेन्द्र यादव एवं पालसीकर के अनुसार विगत दो दशकों में राज्य राजनीति के कुछ नये प्रतिमान उभरे हैं। इसके कई कारण महत्वपूर्ण रहे – जैसे वैचारिक विरासत का टीकाउ होना, राज्य का पृथक राजनीतिक समुदाय के रूप में विकास, पृथक सामाजिक संरचना के अनुरूप राजनीतिक संस्कृति, राज्य स्तर पर

राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि आदि के कारण द्विध्रुवीय दलीय व्यवस्था का विकास हुआ है। जॉन हैरिस ने उत्तरी भारत के अध्ययन से पाया कि राजीतिक सत्ता परम्परागत प्रभुत्वधारी जातियों से नव प्रभुत्वधारियों के बीच हस्तांतरित हुई है जिसके चलते द्विध्रुवियता का विकास हुआ। 1990 के बाद की अवधि में मण्डल एवं कमण्डल की राजनीति के आधार पर द्विध्रुवियता को बल मिला।

6. शक्ति संचय हेतु विचारधारा की अनिश्चितता

2014 के आम चुनावों के बाद बिहार सहित कई राज्यों में राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय दलों के बीच एक स्थाई जुड़ाव की स्थिति बनी है जिसके प्रमुख कारणों में विचारधारा, गठबंधन की शर्तें, सामाजिक विभाजन तथा केन्द्रीय सत्ता का लाभ लेना आदि रहे हैं। राष्ट्रीय दल खासकर भा. ज.पा. द्वारा सभी राज्यों में अपना वर्चस्व कायम करने के अनेक हथकण्डे अपनाये जा रहे हैं। कांग्रेस की शक्तियां क्षीण होती जा रही है। क्षेत्रीय दल इन्हीं दो खेमों में बंट रहे हैं जिसमें भा. ज.पा. की तरफ अधिक झुकाव देखने को मिल रहा है। शायद यह चुनावों में भा.ज.पा. की प्रबलता के कारण ऐसा है। इसके चलते क्षेत्रीयता की भावना का समन हो रहा है। सत्ता संचय राजनतिक दलों का प्रमुख उद्देश्य हो गया है तथा क्षेत्रीय हितों एवं विचारधारा का लोप होता जा रहा है। नेशनल कमीशन फॉर रिभ्यु ऑफ वर्किंग ऑफ कनस्टीच्युशन ने 2002 के अपने प्रतिवेदन में इस बात की पुष्टि की है कि राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र तथा विचारधारा का लोप होता जा रहा है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, हिन्दुत्व तथा आर्थिक विकास अन्य सामाजिक संदर्भों पर हावी हो गया है। आशुतोष वाशनेय ने कहा कि दो तरह की साम्प्रदायिक राजनीति का विकास हुआ – **सलाद बॉल** यानि सभी धर्मों को साथ लेकर चलने की प्रवृत्ति जो धर्मनिरपेक्षता की नीति पर आधारित है तथा **मेल्टिंग पॉट** अर्थात् सभी धर्म हिन्दुत्व की छाया में आ जाएं जिसे हम सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के नाम से भी पुकार सकते हैं।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि भारत में राज्य राजनीति का स्वरूप गत्यात्मक है और बदलती राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप बदलती रहती है फिर भी प्रत्येक राज्य की राजनीति अपना पृथक स्वरूप बनाये रखती है।